महर्षि वेद-व्यास विरचित

'श्रीमद्-देवी भागवत'

में निहित

ती का मूल-पाठ

महर्षि वेदव्यास

कृत

'लघु चण्डी' के पाठ की विधि

'श्रीदुर्गा सप्तशती' के समान ही महर्षि वेदव्यास कृत 'लघु चण्डी' के पाठ की अपनी विशेष महिमा है। इसका पाठ करने में निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये—

१ 'लघु-चण्डी' के प्रत्येक श्लोक का भावार्थ समझते हुये उसका पाठ इस प्रकार करे कि अपने कानों को उसका प्रत्येक शब्द स्पष्ट सुनाई पड़े।

२ पाठ करने के पूर्व स्थान, आसनादि-शोधन-क्रियायें कर ले और भगवती श्री दुर्गा की प्रतिमा, चित्र या पूजन-यन्त्र, जैसी सुविधा हो, विधिवत् अपने सामने स्थापित कर उसके सम्मुख धूप-दीप की व्यवस्था कर ले।

३ यथा-विधि संकल्प करके ही पाठ करना चाहिये। संकल्प के अन्त में निम्न वाक्य की योजना कर ले—

'श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-प्रीति-पूर्वकं अमुक-कामना-सिद्धयर्थं महर्षि-वेदव्यास-कृत—श्रीमद्-देवी-भागवतान्तर्गत-लघु-चण्डी-पाठस्य अमुक-संख्यकावृत्तिमहं करिष्यामि।'

प्रस्तुत 'लघु चण्डी' के पाठ में विनियोगादि का प्रावधान नहीं है किन्तु यदि पाठ-कर्त्ता की इच्छा हो, तो वह निम्न प्रकार विनियोगादि कर सकता है—

विनियोग : ॐ अस्य श्रीमद्-देवी-भागवतान्तर्गत-लघु-चण्डी-पाठस्य श्रीवेदव्यास ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती देवताः, ऐं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, श्री-

(शेष आवरण पृष्ठ ३ पर)
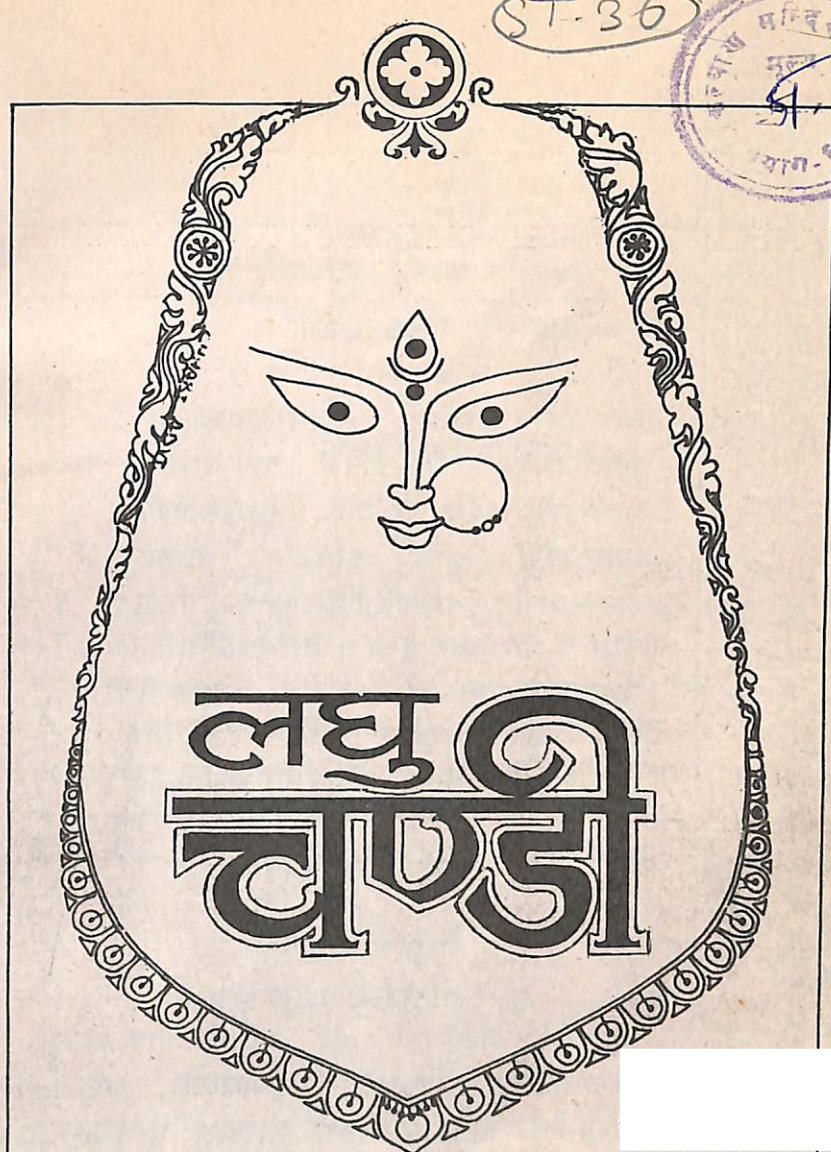
महर्षि वेद-व्यास कृत

श्रीमद्-देवी भागवत

में निहित

सप्तशती का मूल-पाठ

लघु चण्डी

पूर्व-पीठिका

॥ श्रीनारद उवाच ॥

नारायण धराधार सर्व-पालन-कारण !
भवतोदीरितं देवी-चरितं पाप-नाशनम् ॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु सा देवी यत्-स्वरूपिणी ।
यदाकारेण कुरुते प्रादुर्भावं महेश्वरी ॥
तान् नः सर्वान् समाख्याहि देवी-माहात्म्य-मिश्रितान् ।
यथा च येन येनेह पूजिता संस्तुताऽपि हि ॥
मनोरथान् पूरयति भक्तानां भक्त-वत्सला ।
तन्नः शुश्रूषमाणानां देवी-चरितमुत्तमम् ॥
वर्णयस्व कृपा-सिन्धो येनाप्नोति सुखं महत् ।

प्रथम-चरितम्

मधु-कैटभ-वधः

॥ श्रीनारायण उवाच ॥

आकर्णय महर्षे ! त्वं चरितं पाप-नाशनम्,
सप्तमो मनुराख्यातो मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ।
श्राद्ध-देवः परानन्द-भोक्ता मान्यस्तु भू-भुजाम् ॥१॥
स च वैवस्वत-मनुः पर-देव्याः प्रसादतः ।
तथा तत्-तपसा चैव जातो मन्वन्तराधिपः ॥२॥
अष्टमो मनुराख्यातः सावर्णिः प्रथितः क्षितौ ।
स जन्मान्तर आराध्य देवीं तद्-वर-लाभतः ॥३॥
जातो मन्वन्तर-पतिः सर्व-राजन्य-पूजितः ।
महा-पराक्रमो धीरो देवी-भक्ति-परायणः ॥४॥

हिन्दी पूर्व-पीठिका

श्रीनारद बोले—हे पृथ्वी के आधार-स्वरूप, समस्त सृष्टि के पालन और कारण-रूप, नारायण ! आपके द्वारा कथित देवी-चरित पापों का नाश करनेवाला है । सभी मन्वन्तरों में वे देवी महेश्वरी जिस स्वरूप और आकार से प्रादुर्भूत होती हैं, उन सभी देवी-महिमा से युक्त आख्यान को कहिए । जिस प्रकार और जिन-जिनके द्वारा पूजित और प्रार्थित होकर वे भक्तों पर स्नेह करनेवाली भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करती हैं, वह उत्तम देवी-चरित हम सब सुनना चाहते हैं । हे कृपा-सागर ! वर्णन करें, जिससे महान् सुख मिलता है ।

हिन्दी प्रथम चरित: मधु और कैटभ का वध

श्रीनारायण बोले—हे महान् ऋषि ! पापों को नष्ट करनेवाले चरित को तुम सुनो । सातवें मनु परम आनन्द के भोग करनेवाले और भूपतियों के आदरणीय श्राद्ध-देव वैवस्वत भगवान् कहे गये हैं ।।१।। और वे वैवस्वत मनु परा देवी की प्रसन्नता और उनकी ही तपस्या से मन्वन्तर के अधिपति हुए हैं ।।२।। आठवें मनु पृथ्वी पर 'सावर्णि' नाम से प्रसिद्ध हैं । वे पूर्व-जन्म में देवी की पूजा कर उनसे वर पाकर, सब राजाओं के पूज्य बड़े शक्ति-शाली, धैर्य-वान् और देवी की भक्ति में तत्पर मन्वन्तर-पति हुए ।।३-४।।

॥ श्रीनारद उवाच ॥

कथं जन्मान्तरे तेन मनुनाऽऽराधनं कृतम् ।
देव्याः पृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥५॥

॥ श्री नारायण उवाच ॥

चैत्र-वंश-समुद्भूतो राजा स्वारोचिषेऽन्तरे ।
सुरथो नाम विख्यातो महा-बल-पराक्रमः ॥६॥
गुण-ग्राही धुनर्धारी मान्यः श्रेष्ठः कविः कृती ।
धन-संग्रह-कर्ता च दाता याचक-मण्डले ॥७॥
अरीणां मर्दनो मानी सर्वास्त्र-कुशलो बली ।
तस्य कदा बभूवुस्ते कोला-विध्वंसिनो नृपाः ॥८॥
शत्रवः सैन्य-सहिताः परिवार्यैनमूर्जिताः ।
रुरुधुर्नगरीं तस्य राज्ञो मान-धनस्य हि ॥९॥
तदा स सुरथो नाम राजा सैन्य-समावृतः ।
निर्ययौ नगरात् स्वीयात् सर्व-शत्रु-निबर्हणः ॥१०॥
तदा स समरे राजा सुरथः शत्रुभिर्जितः ।
अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव तस्य कोश-गतं धनम् ॥११॥
हृतं सर्वमशेषेण ततोऽतप्यत भूमिपः ।
निष्कासितश्च नगरात् स राजा परम-द्युतिः ॥१२॥
जगामाश्वमथारुह्य मृगया-मिषतो वनम् ।
एकाकी विजनेऽरण्ये बभ्रामोद्भ्रान्त-मानसः ॥१३॥
मुनेः कस्यचिदागत्य स्वाश्रमं शान्त-मानसः ।
प्रशान्त-जन्तु-संयुक्तं मुनि-शिष्य-गणैर्युतम् ॥१४॥
उवास कञ्चित् कालं स राजा परम-शोभने ।
आश्रमे मुनि-वर्यस्य दीर्घ-दृष्टेः सुमेधसः ॥१५॥
एकदा स मही-पालो मुनिं पूजावसानके ।
काले गत्वा प्रणम्याशु पप्रच्छ विनयान्वितः ॥१६॥

श्रीनारद बोले–उन मनु ने पूर्व-जन्म में पृथ्वी से उत्पन्न देवी की आराधना कैसे की, यह मुझे बताइए ।।५।।

श्रीनारायण बोले–दूसरे मनु स्वारोचिष के समय चैत्र वंश में सुरथ नाम के एक बड़े शक्ति-शाली प्रसिद्ध राजा हुए ।।६।। वे गुणियों का आदर करनेवाले, धनुर्विद्या के ज्ञाता, पूज्य, श्रेष्ठ कवि, कर्मठ, धन का संग्रह करनेवाले और प्रार्थियों के समूह को दान देनेवाले थे ।।७।। शत्रुओं को नष्ट करनेवाले, स्वाभिमानी, सभी अस्त्रों में निपुण और बलवान थे । किसी समय उनकी कोला राजधानी को नष्ट करनेवाले राजा प्रकट हुए ।।८।। सेना के सहित शत्रुओं ने बल-गर्वित होकर, उस स्वाभिमानी राजा की नगरी को घेर लिया ।। ९।।

तब सभी शत्रुओं के नाश-कर्त्ता सुरथ नामक राजा सेना-सहित अपने नगर से बाहर निकले ।।१०।। तब युद्ध में वे राजा सुरथ शत्रुओं से हार गए । अमात्य और मन्त्रियों ने ही कोष के धन को पूर्णतया हरण कर लिया और अति तेजस्वी वे राजा नगर से बाहर निकाल दिए गए । इससे भूपति बड़े दुखी हुए ।।११-१२।।

अब वे घोड़े पर चढ़कर शिकार के बहाने वन को चले गए और अकेले निर्जन जंगल में व्याकुल-मन से घूमने लगे ।।१३।। किसी मुनि के निजी आश्रम में पहुँचकर, जो शान्त जीवों से और मुनि के शिष्यों से युक्त था, शान्त-मन होकर उन राजा ने दूर-दर्शी श्रेष्ठ मुनि सुमेधा के अति सुन्दर आश्रम में कुछ समय तक निवास किया ।।१४-१५।।

एक दिन पूजा-समाप्ति के समय मुनि के पास जाकर उन भूपाल ने प्रणाम कर विनय-पूर्वक पूछा– हे मुने ! उत्पन्न मानसिक दुःख तत्व को जाननेवाले मुझको आधि से बराबर इस प्रकार पीड़ित कर रहा है, मानो हे भूसुर ! मैं अज्ञानी ही

॥ राजा सुरथ उवाच ॥

मुने ! मम मनो-दुःखं बाधते चाधि-सम्भवम् ।
ज्ञात-तत्त्वस्य भू-देव ! निष्प्रज्ञस्य च सन्ततम् ॥१७॥
शत्रुभिर्निर्जितस्यापि हृत-राज्यस्य सर्वशः ।
तथापि तेषु मनसि ममत्वं जायते स्फुटम् ॥१८॥
किं करोमि ? क्व गच्छामि ? कथं शर्म लभे मुने !
त्वदनुग्रहमाशासे वद वेद-विदां वर ॥१९॥

॥ सुमेधा-मुनिरुवाच ॥

आकर्णय मही-पाल ! महाश्चर्य-करं परम् ।
देवी-माहात्म्यमतुलं सर्व-काम-प्रदं परम् ॥२०॥
जगन्मयी महा-माया विष्णु-ब्रह्म-हरोद्भवा ।
सा बलादपहृत्य जन्तूनां मानसानि हि ॥२१॥
मोहाय प्रति-संयच्छेदिति जानीहि भूमिप !
सा सृजत्यखिलं विश्वं सा पालयति सर्वदा ॥२२॥
संहारे हर-रूपेण संहरत्येव भूमिप !
काम-दात्री महा-माया काल-रात्रिर्दुरत्यया ॥२३॥
विश्व-संहारिणी काली कमला कमलालया,
तस्यां सर्वं जगज्जातं तस्यां विश्वं प्रतिष्ठितम् ।
लयमेष्यति तस्यां च तस्मात् सैव परात्परा ॥२४॥
तस्या देव्याः प्रसादश्च यस्योपरि भवेन्नृप !
स एव मोहमत्येति नान्यथा धरणी-पते ! ॥२५॥

॥ राजा सुरथ उवाच ॥

का सा देवी त्वया प्रोक्ता ब्रूहि काल-विदां वर !
का मोहयति सत्त्वानि कारणं किं भवेद् द्विज ? ॥२६॥
कस्मादुत्पद्यते देवी ? किं रूपा सा ? किमात्मिका ?
सर्वमाख्याहि भू-देव ! कृपया मम सर्वतः ॥२७॥

हूँ ॥१६-१७॥ शत्रुओं से पराजित हूँ, सब प्रकार से राज्य छिन गया है, फिर भी उनके प्रति मन में ममत्व उत्पन्न हो रहा है ॥१८॥ हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ ! बताइए, क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे शान्ति पाऊँ ? आप ही की दया की आशा है ॥१९॥

मुनि बोले–हे भूपति ! अत्यन्त आश्चर्य-जनक, श्रेष्ठ, अनुपम, सभी कामनाओं को देनेवाले 'देवी-माहात्म्य' को सुनिए ॥२०॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उत्पन्न करनेवाली महा-माया विश्व-मयी हैं । वे प्राणियों के हृदयों का बल-पूर्वक अपहरण कर मोह में डाल देती हैं । हे भूपाल ! जान लीजिए कि वे ही सारे विश्व को उत्पन्न करती हैं, सदैव वे ही उसका पालन करती हैं और संहार के समय हर के रूप द्वारा वे ही संहार करती हैं । हे भूपाल ! सभी कामनाओं को पूरा करनेवाली महा-माया घोर काल-रूपी हैं ॥२१-२२-२३॥

विश्व का संहार करनेवाली काली ही कमल में निवास करनेवाली महा-लक्ष्मी हैं । उन्हीं से सारा संसार उत्पन्न हुआ है, उन्हीं में विश्व स्थित है और उन्हीं में यह लय हो जायगा । अतएव वे ही श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हैं । उन देवी की प्रसन्नता, हे नृपति ! जिस पर होती है, वही मोह से पार पाता है । हे पृथ्वी-पति ! दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥२४-२५॥

राजा बोले–काल के जाननेवालों में श्रेष्ठ ब्रह्मन् ! आपके द्वारा बताई गई वे देवी कौन हैं ? प्राणियों को कौन मुग्ध करती हैं ? क्या कारण होता है ? बताइये ॥२६॥ देवी किनसे उत्पन्न होती हैं ? कैसे रूपवाली हैं ? हे भूसुर ! कृपा-पूर्वक मुझे विस्तार-पूर्वक सब कुछ बताइए ॥२७॥

॥ सुमेधा मुनिरुवाच ॥

राजन् ! देव्याः स्वरूपं ते वर्णयामि निशामय ।
यथा चोत्पतिता देवी येन वा सा जगन्मयी ॥२८॥
यदा नारायणो देवो विश्वं संहृत्य योग-राट् ।
आस्तीर्य शेषं भगवान् समुद्रे निद्रितोऽभवत् ॥२९॥
तदा प्रस्वाप-वशगो देव-देवो जनार्दनः ।
तत्-कर्ण-मल-सञ्जातौ दानवौ मधु-कैटभौ ॥३०॥
ब्रह्माणं हन्तुमुद्युक्तौ दानवौ घोर-रूपिणौ ।
तदा कमलजो देवो दृष्ट्वा तौ मधु-कैटभौ ॥३१॥
निद्रितं देव-देवेशं चिन्तामाप दुरत्ययाम् ।
निद्रितो भगवानीशो दानवौ च दुन्तसदौ ॥३२॥
किं करोमि ? क्व गच्छामि ? कथं शर्म लभे ह्यहम् ?
एवं चिन्तयतस्तस्य पद्म-योनेर्महात्मनः ॥३३॥
बुद्धिः प्रादुरभूत् तात ! तदा कार्य-प्रसाधिनी ।
यस्या वशं गतो देवो निद्रितो भगवान् हरिः ॥३४॥
तां देवीं शरणं यामि निद्रां सर्व-प्रसूतिकाम् ।

॥ ब्रह्मोवाच ॥

देव-देवि ! जगद्धात्रि ! भक्ताभीष्ट-फल-प्रदे ॥३५॥
जगन्माये ! महा-माये ! समुद्र-शयने ! शिवे !
त्वदाज्ञा-वशगाः सर्वे स्व-स्व-कार्य-विधायिनः ॥३६॥
काल-रात्रिर्महा-रात्रिर्मोह-रात्रिर्मदोत्कटा ।
व्यापिनी वशगा मान्या महानन्दैक-शेवधिः ॥३७॥
महनीया महाराध्या माया मधु-मती मही ।
परा-पराणां सर्वेषां परमा त्वं प्रकीर्तिता ॥३८॥
लज्जा पुष्टिः क्षमा कीर्तिः कान्ति-कारुण्य-विग्रहा ।
कमनीया जगद्-वन्द्या जाग्रदादि-स्वरूपिणी ॥३९॥

मुनि बोले–हे राजन् ! वे विश्व-मयी देवी जिस प्रकार अथवा जिनसे उत्पन्न हुईं और देवी का स्वरूप आपसे कहता हूँ, सुनिये ॥२८॥ योगिराज भगवान् नारायण जब संसार का संहार कर समुद्र में शेष-शैय्या पर सो गये, तब देवेश्वर जनार्दन निद्रा के वश में हो गये । उनके कानों के मैल से मधु और कैटभ– दो राक्षस उत्पन्न हुए ॥२९-३०॥

भयङ्कर रूपवाले वे दोनों दानव ब्रह्मा को मारने को उद्यत हुए । तब कमल से उत्पन्न देव ब्रह्मा उन मधु और कैटभ को देखकर तथा देव-देवेश्वर को सोया हुआ देखकर अति चिन्तित हुए कि 'भगवान् ईश्वर सोये हुए हैं और दोनों राक्षस मारने को तैयार हैं ! क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मैं कैसे शान्ति पाऊँ ?' इस प्रकार कमल से उत्पन्न होनेवाले महात्मा ब्रह्मा सोच ही रहे थे कि हे पुत्र ! कार्य सिद्ध करनेवाली यह बुद्धि उनमें उत्पन्न हुई कि 'जिसके वश में होकर भगवान् विष्णु देव सो गये हैं, सबको जन्म देनेवाली उस देवी निद्रा की शरण में जाता हूँ' ॥३१-३४॥

ब्रह्माजी बोले–'भक्तों के मनो-वाञ्छित फल देनेवाली हे देव-देवि ! हे जगन्मातः ! हे जगन्माये ! हे महा-माये ! हे सागर में सोनेवाली ! हे कल्याणि ! आपकी आज्ञा के वश में होकर सभी अपना-अपना काम करते हैं ॥३५-३६॥ भयङ्कर काल-रात्रि, महा-रात्रि और मोह-रात्रि आप ही हैं । आप सर्वत्र व्याप्त हैं । भक्तों के वश में रहती हैं, माननीया हैं और परमानन्द-मयी हैं ॥३७॥

'आप महान् हैं, अति पूज्या हैं, माया-मधुमती-पृथ्वी आप ही हैं । पर से भी परे और सभी से श्रेष्ठ आप मानी गई हैं ॥३८॥ आप लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति और करुणा-स्वरूपवाली हैं । आप सुन्दरी, विश्व-पूज्या और जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरीया रूपवाली हैं ॥३९॥

परमा परमेशानी परानन्द-परायणा ।
एकाप्येक-स्वरूपा च स-द्वितीया द्वयात्मिका ॥४०॥
त्रयी त्रि-वर्ग-निलया तुर्या तुर्य-पदात्मिका ।
पञ्चमी पञ्च-भूतेशी षष्ठी षष्ठेश्वरीति च ॥४१॥
सप्तमी सप्त-वारेशी सप्त-सप्त वर-प्रदा ।
अष्टमी वसु-नाथा च नव-ग्रह-मयीश्वरी ॥४२॥
नव-राग-कला रम्या नव संख्या नवेश्वरी ।
दशमी दश-दिक्-पूज्या दशाशा-व्यापिनी रमा ॥४३॥
एकादशात्मिका चैकादश-रुद्र-निषेविता ।
एकादशी-तिथि-प्रीता एकादश-गणाधिपा ॥४४॥
द्वादशी द्वादश-भुजा द्वादशादित्य-जन्म-भूः ।
त्रयोदशात्मिका देवी त्रयोदश-गण-प्रिया ॥४५॥
त्रयोदशाभिधा भिन्ना विश्वेदेवाधिदेवता ।
चतुर्दशेन्द्र-वरदा चतुर्दश-मनु-प्रसूः ॥४६॥
पञ्चाधिक-दशी-वेद्या पञ्चाधिक-दशी तिथिः ।
षोडशी षोडश-भुजा षोडशेन्दु-कला-मयी ॥४७॥
षोडशात्मक-चन्द्रांशु-व्याप्त-दिव्य-कलेवरा ।
एवं रूपाऽसि देवेशि ! निर्गुणे तामसोदये ॥४८॥
त्वया गृहीतो भगवान् देव-देवो रमा-पतिः ।
एतौ दुरासदौ दैत्यौ विक्रान्तौ मधु-कैटभौ ॥४९॥
एतयोश्च बधार्थाय देवेशं प्रतिबोधय ॥५०॥
एवं स्तुता भगवती तामसी भगवत्-प्रिया ।
देव-देवं तदा त्यक्त्वा मोहयामास दानवौ ॥५१॥
तदैव भगवान् विष्णुः परमात्मा जगत्-पतिः ।
प्रबोधमाप देवेशो ददृशे दानवोत्तमौ ॥५२॥

'आप परमा, परमेश्वरी और परमानन्द-मयी हैं । अकेली होती हुई भी आप एक-संख्या-रूपवाली हैं और द्वितीया माया से युक्त होती हुई भी दो संख्या-रूपवाली हैं ॥४०॥ आप ऋग्-यजु-सामादि वेद-त्रयी या सत्व-रज-तमादि त्रिगुणात्मिका हैं । आप धर्म-अर्थ-कामादि तीनों वर्गों की धाम हैं । आप चतुर्थ तुरीयावस्था-रूपिणी हैं । पंचमी-रूप में आप क्षिति-जल-पावक-गगन-समीरादि महा-भूतों की ईश्वरी हैं । षष्ठी-रूप में आप काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ-मत्सर की स्वामिनी हैं ॥४१॥

'सप्तमी-रूप में आप रवि-सोम-भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनि सात वारों की ईश्वरी हैं और सात-सात (अग्नि) को वर देनेवाली हैं । अष्टमी-रूप में आप धर-ध्रुव-सोम-अह-अनिल-अनल-प्रत्यूष-प्रभास आदि आठ वसुओं की स्वामिनी और रवि-चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-राहु-केतु नौ ग्रहों से युक्त ईश्वरी हैं ॥४२॥ नौ रागों और नौ कलाओं से रमणीया आप नौ-संख्यात्मिका तथा नव की ईश्वरी हैं । दशमी-रूप में आप दसों दिशाओं में पूजनीया हैं और दसों दिशाओं में व्याप्त लक्ष्मी-स्वरूपा हैं ॥४३॥

'एकादश-रूप में ग्यारह रुद्रों द्वारा आपकी सेवा की जाती है । एकादशी तिथि आपको प्रिय है और ग्यारह गणों की आप स्वामिनी हैं॥४४॥ बारह सूर्यों को जन्म देनेवाली आप बारह भुजाओं से युक्त द्वादशी हैं । त्रयोदशी-रूप में आप तेरह गणों की प्रिय देवी हैं । विश्वेदेव की अधिष्ठात्री देवता होकर आप त्रयोदशी हैं । चौदह इन्द्रों को आप वर-दायिनी हैं और चौदह मनुओं की जननी हैं ॥४५-४६॥

'पञ्चदशी नाम से प्रसिद्ध आप पञ्चदशी-तिथि-स्वरूपा हैं । चन्द्र की सोलहवीं कला से युक्त एवं सोलह भुजावाली आप षोडशी हैं ॥४७॥ हे देवर्षि ! चन्द्रमा की सोलह कलाओं से शोभित आपकी देह अलौकिक है । आप ऐसे रूपवाली हो, साथ ही निर्गुण और तामस-स्वरूपा भी हो ॥४८॥ लक्ष्मी के स्वामी देवाधि-देव भगवान् विष्णु आपके वश में हैं । मधु और कैटभ—ये दोनों राक्षस बड़े भयङ्कर आक्रामक हैं । इन दोनों के संहार के लिए आप देवेश्वर विष्णु को जगा दें' ॥४९-५०॥

तदा तौ दानवौ घोरौ दृष्ट्वा तं मधु-सूदनम् ।
युद्धाय कृत-सङ्कल्पौ जग्मतुः सन्निधिं हरेः ॥५३॥
युयुधे च ततस्ताभ्यां भगवान् मधु-सूदनः ।
पञ्च-वर्ष-सहस्राणि बाहु-प्रहरणो विभुः ॥५४॥
तौ तदाऽति-बलोन्मत्तौ जगन्माया-विमोहितौ ।
व्रियतां वर इत्येवमूचतुः परमेश्वरम् ॥५५॥
एवं तस्य वचः श्रुत्वा भगवानादि-पूरुषः ।
वव्रे बध्यावुभौ मेऽद्य भवेतामिति निश्चितम् ॥५६॥
तौ तदाऽति-बलौ देवं पुनरेवोचतुर्हरिम् ।
आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा च परिप्लुता ॥५७॥
तथेत्युक्त्वा भगवता गदा-शङ्ख-भृता नृप !
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥५८॥
एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप !
महा-काली महाराज ! सर्व-योगेश्वरेश्वरी ॥५९॥
महा-लक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय मही-पते ! ॥६०॥

॥ श्रीमद्देवी-भागवते महा-पुराणे दशम-स्कन्धे
लघु-चण्डी-पाठे प्रथमं चरितं सम्पूर्णम् ॥

मुनि सुमेधा ने कहा–ऐसी प्रार्थना किए जाने पर भगवान् की प्रियतमा तामसी भगवती ने देवाधि-देव विष्णु को छोड़कर दोनों राक्षसों को मोह में डाल दिया ।।५१।। तभी जगदीश्वर परमात्मा भगवान् विष्णु जाग गए और उन देवेश्वर ने दोनों श्रेष्ठ राक्षसों को देखा ।।५२।।

युद्ध के लिए निश्चय किए हुए वे दोनों भयङ्कर दानव तब उन विष्णु भगवान् को देखकर उनके समीप गये । भगवान् विष्णु ने तब उन दोनों से पाँच हजार वर्षों तक युद्ध किया ।।५३-५४।। तदनन्तर बल से उन्मत्त उन दोनों ने जगन्माया के द्वारा विमुग्ध होकर परमेश्वर विष्णु से यह कहा कि 'वर माँगो ।' आदि पुरुष भगवान् विष्णु ने उन दोनों की यह बात सुनकर कहा कि 'तुम दोनों आज मेरे द्वारा अवश्य मारे जाओ' ।।५५-५६।।

अत्यन्त बल-शाली उन दोनों ने तब विष्णु भगवान् से फिर यह कहा कि 'जहाँ पृथ्वी जल से डूबी हुई न हो, वहाँ हम दोनों को मारो ।' 'वैसा ही सही'–यह कहकर गदा और शङ्ख-धारी भगवान् ने, हे राजन् ! उन दोनों के सिर जाँघ पर रखकर चक्र से काट डाले ।।५७-५८।।

हे राजन् ! ब्रह्मा के द्वारा स्तुति किये जाने पर योगेश्वर की ईश्वरी देवी 'महा-काली' इस प्रकार प्रकट हुई थीं ।

हे भूपते ! 'महा-लक्ष्मी' की उत्पत्ति का वैसा ही वर्णन ध्यान से सुनो ।।५९-६०।।

मध्यम-चरितम्

महिषासुर-वधः

॥ सुमेधा-मुनिरुवाच ॥

महिषी-गर्भ-सम्भूतो महा-बल-पराक्रमः ।
देवान् सर्वान् पराजित्य महिषोऽभूज्जगत्-प्रभुः ॥१॥
सर्वेषां लोक-पालानामधिकारान् महाऽसुरः ।
बलान्निर्जित्य बुभुजे त्रैलोक्यैश्वर्यमद्भुतम् ॥२॥
तत-पराजिताः सर्वे देवाः स्वर्ग-परिच्युताः ।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ते जग्मुर्लोकमुत्तमम् ॥३॥
यत्रोत्तमौ देव-देवौ संस्थितौ शङ्कराच्युतौ ।
वृत्तान्तं कथयामासुर्महिषस्य दुरात्मनः ॥४॥
देवानां चैव सर्वेषां स्थानानि तरसाऽसुरः ।
विनिर्जित्य स्वयं भुंक्ते बल-वीर्य-मदोद्धतः ॥५॥
महिषासुर-नामाऽसौ दुष्ट-दैत्योऽमरेश्वरौ ।
बधोपायश्च तस्याशु चिन्त्यतामसुरार्दनौ ॥६॥
एवं श्रुत्वा स भगवान् देवानामार्त्ति-युग-वचः ।
चक्रतुः परमं कोपं तदा शङ्कर-पद्मजौ ॥७॥
एवं कोप-युतस्यास्य हरेरास्यान् मही-पते !
तेजः प्रादुरभूद् दिव्यं सहस्रार्क-सम-द्युतिः ॥८॥
अथानुक्रमतस्तेजः सर्वेषां त्रि-दिवौकसाम् ।
शरीरादुद्भवं प्राप हर्षयद् विबुधाधिपान् ॥९॥
यदभूच्छम्भुजं तेजो मुखमस्योदपद्यत ।
केशा बभूवुर्याम्येन वैष्णवेन च बाहवः ॥१०॥
सौम्येन च स्तनौ जातौ माहेन्द्रेण च मध्यमः ।
वारुणेन ततो भूप ! जङ्घोरू सम्बभूवतुः ॥११॥

हिन्दी मध्यम चरित :

महिषासुर का वध

मुनि सुमेधा बोले—महिषी के गर्भ से उत्पन्न अत्यन्त बलवान् और घोर आक्रमण-कारी महिष सभी देवताओं को हराकर संसार का स्वामी बन बैठा ॥१॥ सभी लोक-पालों के अधिकारों को बल-पूर्वक छीनकर वह महान् असुर तीनों लोकों के विलक्षण वैभव का भोग करने लगा ॥२॥ तब सभी हारे हुए देवता स्वर्ग से बहिष्कृत होकर और ब्रह्मा को आगे कर उत्तम लोक (कैलास और वैकुण्ठ) में पहुँचे, जहाँ श्रेष्ठ दो देवेश्वर शङ्कर और विष्णु विराजमान रहते हैं तथा दुष्ट महिष का वृत्तान्त कह सुनाया ॥३-४॥

'हे देवताओ क दोनों ईश्वर ! महिषासुर नामक दुष्ट दैत्य सभी देवों के स्थानों को हठात् छीनकर बल-पराक्रम के गर्व से धृष्ट होकर स्वयं उनका उपभोग कर रहा है। हे असुरों को नाश करनेवाले ! शीघ्र ही उसके बध का उपाय सोचें' ॥५-६॥

देवों के दुःख से संयुक्त इस प्रकार के वचन सुन कर उन भगवान् विष्णु ने अत्यन्त क्रोध किया, शङ्कर और ब्रह्मा ने भी क्रोध किया ॥७॥ इस प्रकार क्रोध-युक्त विष्णु के मुख से, हे राजन् ! हजारों सूर्य-जैसी चमकवाला दिव्य तेज प्रगट हुआ ॥८॥ इसके बाद क्रमशः सभी देवों के शरीर से तेज निकला, जिससे देवेश्वर प्रसन्न हुए ॥९॥

शम्भु से जो तेज निकला, उससे मुख बना। यमराज के तेज से केश बने और विष्णु-तेज से भुजाएँ बनीं ॥१०॥ हे राजन् ! चन्द्र-तेज से दो स्तन उत्पन्न हुए और इन्द्र-तेज से कमर बनी। तब वरुण-तेज से जंघा और उरु बनी ॥११॥ पृथ्वी-तेज से दो

नितम्बौ तेजसा भूमेः पादौ ब्राह्मेण तेजसा ।
पादांगुल्यो भानवेन वासवेन करांगुली ॥१२॥
कौबेरेण तथा नासा दन्ताः संजज्ञिरे तदा ।
प्राजापत्येनोत्तमेन तेजसा वसुधाधिप ! ॥१३॥
पावकेन च सञ्जातं लोचन-त्रितयं शुभम् ।
सान्ध्येन तेजसा जाते भृकुट्यौ तेजसां निधी ॥१४॥
कर्णौ वायव्यतो जातौ तेजसो मनुजाधिप !
सर्वेषां तेजसा देवी जाता महिष-मर्दिनी ॥१५॥
शूलं ददौ शिवो विष्णुश्चक्रं शङ्खं च पाश-भृत् ।
हुताशनो ददौ शक्तिं मारुतश्चाप-सायकौ ॥१६॥
वज्रं महेन्द्रः प्रददौ घण्टां चैरावताद् गजात् ।
काल-दण्डं यमो ब्रह्मा चाक्ष-माला-कमण्डलू ॥१७॥
दिवाकरो रश्मि-मालां रोम-कूपेषु सन्ददौ ।
कालः खड्गं तथा चर्म निर्मलं वसुधाधिप ! ॥१८॥
समुद्रो निर्मलं हारमजरे चाम्बरे नृपः ।
चूडा-मणिं कुण्डले च कटकानि तथाऽङ्गदे ॥१९॥
अर्ध-चन्द्रं निर्मलं च नूपुराणि तथा ददौ ।
ग्रैवेयकं भूषणं च तस्यै देव्यै मुदान्वितः ॥२०॥
विश्व-कर्मा चोर्मिकाश्च ददौ तस्यै धरा-पते !
हिम-वान् वाहनं सिंह रत्नानि विविधानि च ॥२१॥
पान-पात्रं सुरा-पूर्णं ददौ तस्यै धनाधिपः ।
शेषश्च भगवान् देवो नाग-हारं ददौ विभुः ॥२२॥
अन्यैरशेष-विबुधैर्मानिता सा जगन्मयी ।
तां तुष्टुवुर्महा-देवीं देवा महिष-पीडिताः ॥२३॥
नाना-स्तोत्रैर्महेशानीं जगदुद्भव-कारिणीम् ।
तेषां निशम्य देवेशी स्तोत्रं बिवुध-पूजिता ॥२४॥

नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से दो पैर, सूर्य-तेज से पैरों की अँगुलियाँ, वसुओं के तेज से हाथों की अँगुलियाँ बनीं ॥१२॥ हे राजन् ! कुबेर के तेज से नाक और प्रजापति के श्रेष्ठ तेज से दाँत उत्पन्न हुए ॥१३॥

अग्नि-तेज से सुन्दर तीन नेत्र उत्पन्न हुए और सन्ध्या के तेज से कान्तिपूर्ण दो भौंहें प्रकट हुईं ॥१४॥ वायु के तेज से दो कान उत्पन्न हुए । हे राजन् ! सभी के तेज से इस प्रकार महिष-मर्दिनी देवी प्रकट हुईं ॥१५॥

शिव ने शूल, विष्णु नें चक्र और वरुण ने शङ्ख दिया । अग्नि ने शक्ति और वायु ने धनुष-वाण दिये ॥१६॥ इन्द्र ने वज्र और ऐरावत हाथी ने घण्टा दिया । यम ने काल-दण्ड, ब्रह्मा ने अक्ष-माला और कमण्डलु दिये ॥१७॥ सूर्य ने रोम-छिद्रों में किरणों का तेज भर दिया । हे राजन् ! काल ने खड्ग और चमकती हुई ढाल दी ॥१८॥ हे राजन् ! समुद्र ने स्वच्छ हार, सदा नवीन रहनेवाले वस्त्र, चूड़ामणि, कुण्डल, कटक, अङ्गद, निर्मल अर्ध-चन्द्र, नूपुर, गले के आभूषण उन देवी को प्रसन्न होकर दिये ॥१९-२०॥ हे राजन् ! विश्वकर्मा ने उन्हें अँगूठियाँ दीं । हिमालय ने विविध रत्नों के साथ सवारी के लिए सिंह दिया ॥२१॥

धनाध्यक्ष कुबेर नें सुरा से भरा हुआ पान-पात्र दिया । भगवान् अनन्त देव शेषनाग ने नाग-हार दिया । ॥२२॥

अन्य सभी देवताओं ने उन जगन्मयी का सम्मान किया । महिषासुर से सताये हुए देवों ने संसार को उत्पन्न करनेवाली उन महा-देवी महेश्वरी की विविध स्तोत्रों के द्वारा स्तुति की । उनकी स्तुति को सुनकर देव-पूजिता देवेश्वरी ने महिषासुर के बध के लिए उच्च स्वर से गर्जना की । हे राजन् ! उस गर्जन से महिषासुर चौंक पड़ा ॥२३-२५॥

महिषस्य वधार्थाय महा-नादं चकार ह ।
तेन नादेन महिषश्चकितोऽभूद् धरा-पते ! ॥२५॥
आससाद जगद्धात्रीं सर्व-सैन्य-समावृतः ।
ततः स युयुधे देव्या महिषाख्यो महाऽसुरः ॥२६॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा क्षिप्तैः पूरयन्नम्बरान्तरम् ।
चिक्षुरो ग्रामणीः सेना-पतिर्दुर्धर-दुर्मुखौ ॥२७॥
वाष्कलस्ताम्रकश्चैव विडाल-वदनोऽपरः ।
एतैश्चान्यैरसंख्यातैः संग्रामान्तक-सन्निभैः ॥२८॥
योधैः परिवृतो वीरो महिषो दानवोत्तमः ।
ततः सा कोप-ताम्राक्षी देवी लोक-विमोहिनी ॥२९॥
जघान योधान् समरे देवी महिषमाश्रितान् ।
ततस्तेषु हतेष्वेव स दैत्यो रोष-मूर्छितः ॥३०॥
आससाद तदा देवी तूर्णं माया-विशारदः ।
रूपान्तराणि सम्भेजे मायया दानवेश्वरः ॥३१॥
तानि तान्यस्य रूपाणि नाशयामास सा तदा ।
ततोऽन्ते माहिषं रूपं बिभ्राणममरार्दनम् ॥३२॥
पाशेन बद्ध्वा सु-दृढं छित्वा खड्गेन तच्छिरः ।
पातयामास महिषं देवी देव-गणान्तकम् ॥३३॥
हाहा-कृतं ततः शेषं सैन्यं भग्नं दिशो दश ।
तुष्टुवुर्देव-देवेशीं सर्वे देवाः प्रमोदिताः ॥३४॥
एवं लक्ष्मी समुत्पन्ना महिषासुर-मर्दिनी ।
राजन् ! श्रृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाऽभवत् ॥३५॥

॥ श्रीमद्देवी-भागवते महा-पुराणे दशम-स्कन्धे
लघु-चण्डी-पाठे मध्यम-चरितं सम्पूर्णम् ॥

तब सभी सेनाओं से घिरा हुआ महिष नामक महान् असुर जगद्धात्री के पास आ पहुँचा और वह देवी के साथ युद्ध करने लगा ।।२६।।

बहुत प्रकार के फेंके गए शस्त्र- अस्त्रों से पृथ्वी से आकाश तक को आच्छादित करते हुए सेनापति चिक्षुर, ग्रामणी, दुर्धर-दुर्मुख, वाष्कल, ताम्रक, विडाल-वदन और अन्य असंख्य यमराज के समान भयङ्कर योद्धाओं से दानव-श्रेष्ठ वीर महिषासुर घिरा हुआ था । तब क्रोध से लाल आँखोंवाली भुवन-मोहिनी देवी ने महिष के अधीनस्थ सभी योद्धाओं को युद्ध में मार डाला । उन सबके मारे जाने पर माया में अत्यन्त निपुण वह दैत्य महिष क्रोध से बेसुध होकर देवी के पास पहुँचा । दैत्य-राज ने माया के द्वारा अनेक रूप धारण किये ।।२७-३१।।

उसके उन सभी रूपों को उन देवी ने नष्ट कर दिया । तब अन्त में देव-पीड़क दैत्य ने महिष का रूप धारण किया ।।३२।। देवी ने देवताओं के लिए यम के समान भयङ्कर महिष को पाश द्वारा दृढ़ता से बाँध कर और उसके सिर को खड्ग से काटकर उसे गिरा दिया ।।३३।। तब बची हुई सेना छिन्न-भिन्न हो हाहाकार करती हुई दस दिशाओं में भाग खड़ी हुई । इस पर सभी देवता प्रसन्न होकर देव-देवेश्वरी की स्तुति करने लगे ।।३४।।

हे राजन् ! इस प्रकार महिषासुर-मर्दिनी महा-लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ । अब जिस प्रकार महा-सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ, उसे सुनो ।।३५।।

उत्तम-चरितम्

शुम्भ-निशुम्भ-वधः

॥ सुमेधा-मुनिरुवाच ॥

एकदा शुम्भ-नामाऽसीद् दैत्यो मद-बलोत्कटः ।
निशुम्भश्चापि तद्-भ्राता महा-बल-पराक्रमः ॥१॥
तेन सम्पीडिता देवाः सर्वे भ्रष्ट-श्रियो नृप !
हिमवन्तमथासाद्य देवीं तुष्टुवुरादरात् ॥२॥

॥ देवा ऊचुः ॥

जय देवेशि ! भक्तानामार्त्ति-नाशन-कोविदे !
दानवान्तक-रूपे ! त्वमजराऽमरणेऽनघे ! ॥३॥
देवेशि ! भक्ति-सुलभे ! महा-बल-पराक्रमे !
विष्णु-शङ्कर-ब्रह्मादि-स्वरूपेऽनन्त-विक्रमे ! ॥४॥
सृष्टि-स्थिति-करे ! नाश-कारिके ! कान्ति-दायिनि !
महा-ताण्डव-सु-प्रीते ! मोद-दायिनि ! माधवि ! ॥५॥
प्रसीद देव-देवेशि ! प्रसीद करुणा-निधे !
निशुम्भ-शुम्भ-सम्भूत-भयापाराम्बु-वारिधे ।
उद्धरास्मान् प्रपन्नार्त्ति-नाशिके ! शरणागतान् ॥६॥

॥ सुमेधा मुनिरुवाच ॥

एवं संस्तुवतां तेषां त्रि-दशानां धरा-पते !
प्रसन्ना गिरिजा प्राह ब्रूत स्तवन-कारणम् ॥७॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्याः कोश-रूपात् समुत्थिता ।
कौशिकी सा जगत्-पूज्या देवान् प्रीत्येदमब्रवीत् ॥८॥
प्रसन्नाऽहं सुर-श्रेष्ठाः स्तवेनोत्तम-रूपिणी ।
व्रियतां वर इत्युक्ते देवाः संवव्रिरे वरम् ॥९॥
शुम्भ-नामाऽवरो भ्राता निशुम्भस्तस्य विश्रुतः ।
त्रैलोक्यमोजसाऽऽक्रान्तं दैत्येन बल-शालिना ॥१०॥

हिन्दी उत्तम चरित :

शुम्भ-निशुम्भ-वध

सुमेधा मुनि बोले–हे राजन् ! एक समय शुम्भ नाम का दैत्य अपने बल के अहङ्कार से बड़ा उग्र हो गया और उसका भाई निशुम्भ भी अत्यन्त शक्तिशाली था । उसके द्वारा पराजित हो सभी देवता श्री-हीन होकर हिमालय पर पहुँचकर श्रद्धा-पूर्वक देवी की स्तुति करने लगे ।।१-२।।

देवता बोले–हे देवेश्वरि ! हे भक्तों के दुःखों को नष्ट करने में निपुण देवि ! हे दानवों के लिए यम-स्वरूपे ! हे निष्पापे ! आप अजर-अमर हैं ।।३।। हे सुरेशि ! हे भक्ति से सहज ही मिलनेवाली देवि ! हे अत्यन्त शक्ति-शालिनि ! हे ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि-स्वरूपे ! हे अपार-पराक्रमे ! हे सृष्टि-स्थिति-कारिणि ! हे संहार-कारिणि ! हे तेज-प्रदे ! हे प्रलय-नृत्य से अति प्रसन्न होनेवाली देवि ! हे आनन्द-दायिनि ! हे वैष्णवि ! हे देव-देवेश्वरि ! प्रसन्न हो जाओ । हे दया- सागरे ! प्रसन्न हो जाओ । हे शरणागत के दुःख नष्ट करनेवाली देवि ! शुम्भ और निशुम्भ से उत्पन्न अपार समुद्र के समान भय से हम शरणागत देवों का उद्धार करो ।।४-६।।

सुमेधा मुनि बोले–हे पृथ्वी-पति ! इस प्रकार स्तुति करने-वाले उन देवों पर प्रसन्न होकर पार्वती बोलीं कि 'स्तुति का प्रयोजन बताओ' ।।७।। इसी बीच देवी के शरीर से उत्पन्न हुई विश्व-पूजनीया कौशिकी देवी ने बड़े प्रेम से देवों से कहा कि 'हे श्रेष्ठ देवताओं ! मैं आपकी इस श्रेष्ठ-रूपा स्तुति से प्रसन्न हूँ । वर माँगिये ।' ऐसा कहे जाने पर देवों ने वर माँगा ।।८-९।। 'शुम्भ और उसके भाई निशुम्भ प्रख्यात हैं, अपनी शक्ति से उसने तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया है । हे देवि ! उसके बध का विचार करिये । हे देवि ! वह दुष्टात्मा दैत्यराज अपनी शक्ति से हमें अपमानित कर निरन्तर सताता रहता है' ।।१०-११।।

तद्-बधश्चिन्त्यतां देवि ! दुरात्मा दानवेश्वरः ।
बाधते सततं देवि ! तिरस्कृत्य निजौजसा ।।११।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

देव-शत्रुं पातयिष्ये निशुम्भं शुम्भमेव च ।
स्वस्थास्तिष्ठन्तु भद्रं वः कण्टकं नाशयामि वः ।।१२।।
इत्युक्त्वा देव-देवेशी देवान् सेन्द्रान् दया-मयी ।
जगामादर्शनं सद्यो मिषतां त्रि-दिवौकसाम् ।।१३।।
देवाः समागता हृष्टाः सुवर्णाद्रि-गुहां शुभाम् ।
चण्ड-मुण्डौ पश्यतः स्म भृत्यौ शुम्भ-निशुम्भयोः ।।१४।।
दृष्ट्वा तां चारु-सर्वाङ्गीं देवीं लोक-विमोहिनीम् ।
कथयामासतू राज्ञे भृत्यौ तौ चण्ड-मुण्डकौ ।।१५।।
देव ! सर्वासुर-श्रेष्ठ ! रत्न-भोगार्ह ! मानद !
अपूर्वा कामिनी दृष्टा चावाभ्यां रिपु-मर्दन ! ।।१६।।
तस्याः सम्भोग-योग्य त्वमस्त्येव तव साम्प्रतम् ।
तां समानय चार्वङ्गीं भुंक्ष्व सौख्य-समन्वितः ।।१७।।
तादृशी नासुरी नारी न गन्धर्वी न दानवी ।
न मानवी नापि देवी यादृशी सा मनोहरा ।।१८।।
एवं भृत्य-वचः श्रुत्वा शुम्भः पर-बलार्दनः ।
दूतं सम्प्रेषयामास सुग्रीवं नाम दानवम् ।।१९।।
स दूतस्त्वरितं गत्वा देव्याः स-विधमादरात् ।
वृत्तान्तं कथायामास देव्यै शुम्भस्य यद्-वचः ।।२०।।

श्रीदेवी बोलीं–'देवों के शत्रु निशुम्भ और शुम्भ को मैं निश्चय ही मारूँगी। आप निश्चिन्त रहें, आपका कल्याण होगा, आपके काँटे को मैं नष्ट करूँगी' ॥१२॥ इन्द्र आदि देवों से ऐसा कहकर कृपा-मयी देव-देवेश्वरी देवताओं के देखते-देखते तुरन्त ही अन्तर्ध्यान हो गईं ॥१३॥ देव-गण प्रसन्न होकर सुमेरु पर्वत की सुन्दर गुफा में चले आये। शुम्भ-निशुम्भ के दो सेवकों–चण्ड और मुण्ड ने सर्वाङ्ग-सुन्दरी भुवन-मोहिनी देवी को देखा और उन्हें देखकर उन दोनों सेवकों ने राजा शुम्भ से जाकर कहा ॥१४-१५॥ 'हे सभी असुरों में श्रेष्ठ राजन्! हे सभी श्रेष्ठ वस्तुओं के भोगने के अधिकारी! हे सम्मान-दाता! हे शत्रु-नाशक! हम दोनों ने एक अपूर्व सुन्दरी देखी है ॥१६॥ उसके साथ रमण करने की योग्यता इस समय आपकी ही है। उस सर्वाङ्ग-सुन्दरी को ले आइये और सुख-पूर्वक भोग करिये ॥१७॥ जिस प्रकार की मनोरमा वह है, उस प्रकार की न कोई आसुरी स्त्री है, न गान्धर्वी, न दानवी, न मानवी और न देवी' ॥१८॥

सेवक की यह बात सुनकर शत्रु-शक्ति-नाशक शुम्भ ने सुग्रीव नामक दैत्य-दूत को भेजा ॥१९॥ उस दूत ने शीघ्र देवी के पास जाकर विधि-पूर्वक आदर के साथ शुम्भ का जो कथन था, वह सब देवी से कह सुनाया ॥२०॥

।। दूत उवाच ।।

देवि ! शुम्भासुरो नाम त्रैलोक्य-विजयी प्रभुः ।
सर्वेषां रत्न-वस्तूनां भोक्ता मान्यो दिवौकसाम् ।।२१।।
तदुक्तं श्रृणु मे देवि ! रत्न-भोक्ताऽहमव्ययः ।
त्वं चापि रत्न-भूताऽसि भज मां चारु-लोचने ! ।।२२।।
सर्वेषु यानि रत्नानि देवासुर-नरेषु च ।
तानि मय्येव सुभगे ! भज मां कामजै रसैः ।।२३।।

।। श्रीदेव्युवाच ।।

सत्यं वदसि हे दूत ! दैत्य-राज-प्रियंकरम् ।
प्रतिज्ञा या मया पूर्वं कृता साऽप्यनृता कथम् ।।२४।।
भवेत् तां श्रृणु मे दूत ! या प्रतिज्ञा यथा कृता ।।२५।।
यो मे दर्पं विधुनुते यो मे बलमपोहति ।
यो मे प्रति-बलो भूयात् स एव मम भोग-भाक् ।।२६।।
तत एनां प्रतिज्ञां मे सत्यां कृत्वाऽसुरेश्वरः ।
गृह्णातु पाणिं तरसा तस्याशक्यं किमत्र हि ।।२७।।
तस्माद् गच्छ महा-दूत ! स्वामिनं ब्रूहि चादृतः ।
प्रतिज्ञां चापि मे सत्यां विधास्यति बलाधिकः ।।२८।।

।। सुमेधा-मुनिरुवाच ।।

एवं वाक्यं महा-देव्याः समाकर्ण्य स दानवः ।
कथयामास शुम्भाय देव्या वृत्तान्तमादितः ।।२९।।
तदाऽप्रियं दूत-वाक्यं शुम्भः श्रुत्वा महा-बलः ।
कोपमाहारयामास महान्तं दनुजाधिपः ।।३०।।

श्रीदेवी बोलीं–हे दूत ! दैत्य-राज को प्रिय लगनेवाला सत्य तुम कहते हो किन्तु जो प्रतिज्ञा मैंने पहले की है, वह भी असत्य कैसे हो ? हे दूत ! जो प्रतिज्ञा जैसी मैंने की है, उसे सुनो । जो मेरे गर्व को चूर्ण करे, जो मेरी शक्ति को तिरस्कृत करे, जो मेरे पराक्रम का प्रतिद्वन्द्वी हो, वही मेरे भोग-विलास के योग्य हो सकता है । अतः दैत्यराज मेरी इस प्रतिज्ञा को सत्य कर शीघ्र मेरे हाथ को ग्रहण करे । उसके लिए इसमें असमर्थता क्या है ? इसलिये हे राज-दूत ! जाओ और स्वामी से सब कुछ कहो । अधिक शक्तिवाला है, तो मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेगा ॥२४-२८॥

दूत ने कहा–हे देवि ! शुम्भ नामक असुर तीनों लोकों को जीतनेवाले स्वामी हैं, सभी श्रेष्ठ वस्तुओं के उपभोक्ता हैं, देवताओं के सम्मान्य हैं ॥२१॥ उनके कथन को सुनिये–'हे देवि ! मैं अविनाशी श्रेष्ठ वस्तुओं का उपभोक्ता हूँ । तुम भी श्रेष्ठ स्त्री-रूपा हो । अतः हे सुनयने ! मुझे वरण करो । देव, असुर और मनुष्य सभी लोकों में जो श्रेष्ठ वस्तुयें हैं, वे सभी मेरे ही अधिकार में हैं । हे सुन्दरि ! श्रृङ्गार-रस से युक्त होकर मेरी सेवा करो' ॥२२-२३॥

सुमेधा मुनि बोले–वह दैत्य महा-देवी के इस प्रकार के वचन सुनकर शुम्भ के पास गया और उससे देवी का सारा कथन कह सुनाया । दूत की कटु बातों को सुनकर अति बली दैत्य-राज शुम्भ ने बड़ा क्रोध किया । तब दैत्य-राज ने धूम्राक्ष नामक दैत्य को आदेश दिया कि 'हे धूम्राक्ष ! सावधानी से मेरी बात सुनो । उस दुष्टा को बालों से पकड़कर मेरे पास अविलम्ब ले आओ । मेरे सामने से शीघ्र जाओ' ॥२९-३२॥

ततो धूम्राक्ष-नामानं दैत्यं दैत्य-पतिः प्रभुः ।
आदिदेश श्रृणु वचो धूम्राक्ष ! मम चादृतः ॥३१॥
तां दुष्टां केश-पाशेषु धृत्वाऽप्यानीयतां मम ।
समीपमविलम्बेन शीघ्रं गच्छस्व मे पुरः ॥३२॥
इत्यादेशं समासाद्य दैत्येशो धूम्र-लोचनः ।
षष्ट्याऽसुराणां सहितः सहस्राणां महा-बलः ॥३३॥
तुहिनाचलमासाद्य देव्याः स-विधमेव सः ।
उच्चैर्देवीं जगादाशु भज दैत्य-पतिं शुभे !॥३४॥
शुम्भं नाम महा-वीर्यं सर्व-भोगानवाप्नुहि ।
नोचेत् केशान् गृहीत्वा त्वां नेष्ये दैत्य-पतिं प्रति ॥३५॥
इत्युक्ता सा ततो देवी दैत्येन त्रिदशारिणा ।
उवाच दैत्य ! यद् ब्रूषे तत् सत्यं ते महा-बल ! ॥३६॥
राजा शुम्भासुरस्त्वं च किं करिष्यसि तद् वद ।
इत्युक्तो दैत्यपो धावत् तूर्णं शस्त्र-समन्वितः ॥३७॥
भस्म-सात् तं चकाराशु हुंकारेण महेश्वरी ॥३८॥
ततः सैन्यं वाहनेन देव्या भग्नं मही-पते !
दिशो दशाभजच्छीघ्रं हा-हा-भूतमचेतनम् ॥३९॥
तद् वृत्तान्तं समाश्रुत्य स शुम्भो दैत्य-राड् विभुः ।
चुकोप च महा-कोपाद् भ्रुकुटी-कुटिलाननः ॥४०॥

इस प्रकार का आदेश पाकर दैत्य-स्वामी अति बली धूम्र-लोचन साठ हजार असुरों के साथ हिमालय पर देवी के पास जा पहुँचा और देवी से उसने चिल्लाकर कहा कि
हे कल्याणि !
शीघ्र ही शुम्भ नामक अति पराक्रमी दैत्य-राज का वरण करो और सभी सुखों को प्राप्त करो, नहीं तो बालों को पकड़कर तुम्हें दैत्य-राज के पास ले जाऊँगा' ॥३३-३५॥

देव-शत्रु दैत्य के द्वारा इस प्रकार कही गयी उन देवी ने तब कहा कि 'हे अति बली दैत्य ! जो कहते हो, वह तुम्हारा सत्य है ।

राजा शुम्भासुर और तुम क्या करोगे, यह बताओ ।' ऐसा कहने पर शस्त्र-धारी दैत्य-सेनापति तेजी से झपटा । महेश्वरी ने हुकार से तुरन्त ही उसे भस्म कर डाला । तब हे राजन् ! देवी का वाहन सिंह सेना को नष्ट करने लगा, जिससे वह हाहाकार करती बेहाल होकर दसों दिशाओं में भाग गई । यह हाल सुनकर वह दैत्य-राज शुम्भ अति क्रोध से कुपित हो उठा, उसकी भौंहें टेढ़ी हो गईं और उसने क्रमशः चण्ड, मुण्ड और रक्त-बीज को भेजा ।

ततः कोप-परीतात्मा दैत्य-राजः प्रताप-वान् ।
चण्डं मुण्डं रक्त-बीजं क्रमशः प्रैषयद् विभुः ॥४१॥
ते च गत्वा त्रयो दैत्या विक्रान्ता बहु-विक्रमाः ।
देवीं ग्रहीतुमारब्ध-यत्नास्ते ह्यभवन् बलात् ॥४२॥
तानपतत एवासौ जगद्धात्री मदोत्कटा ।
शूलं गृहीत्वा वेगेन पातयामास भू-तले ॥४३॥
स-सैन्यान् निहिताञ्छ्रुत्वा दैत्यांस्त्रीन् दानवेश्वरौ ।
शुम्भश्च निशुम्भश्च द्रुतं समाजग्तुरोजसा ॥४४॥
निशुम्भश्चैव शुम्भश्च कृत्वा युद्धं महोत्कटम् ।
देव्याश्च वशगौ जातौ निहतौ च तयाऽसुरौ ॥४५॥
इति दैत्य-वरं शुम्भं घातयित्वा जगन्मयी ।
विबुधैः संस्तुता तद्-वत् साक्षाद् वागीश्वरी परा ॥४६॥
एवं ते वर्णितो राजन् ! प्रादुर्भावोऽति-रम्यकः ।
काल्याश्चैव महा-लक्ष्म्याः सरस्वत्या क्रमेण च ॥४७॥
परा परेश्वरी देवी जगत्-सर्गं करोति च ।
पालनं चैव संहारं सैव देवी दधाति हि ॥४८॥
तां समाश्रय देवेशीं जगन्मोह-निवारिणीम् ।
महा-मायां पूज्य-तमां सा ते कार्यं विधास्यति ॥४९॥

उन तीनों अति पराक्रमी दैत्यों ने जाकर देवी को बल-पूर्वक पकड़ने का प्रयत्न किया। उनके आक्रमण करते ही उन गर्वोन्मत्ता जगद्धात्री ने शूल लेकर तेजी से उन्हें मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। सेना-सहित तीनों दैत्यों के मारे जाने की बात सुनकर दोनों दैत्य-राजाओं शुम्भ और निशुम्भ ने अति उग्र युद्ध किया और देवी के वशीभूत होकर देवी के द्वारा दोनों असुर मारे गये।

इस प्रकार श्रेष्ठ दैत्य शुम्भ को मारनेवाली जगन्मयी की देवों ने साक्षात् परमा वागीश्वरी के रूप में स्तुति की।

हे राजन्! इस अत्यन्त सुन्दर प्रादुर्भाव का वर्णन मैंने आपसे किया ॥३६-४६॥

महा-काली, महा-लक्ष्मी और महा-सरस्वती के रूप में क्रमशः परमेश्वरी परा देवी जगत् की सृष्टि करती हैं। पालन और संहार भी वही देवी करती हैं। संसार के मोह को दूर करनेवाली श्रेष्ठ पूज्या उन्हीं देवेश्वरी महा-माया का आश्रय ग्रहण करो। वे तुम्हारे कार्य को सिद्ध करेंगी ॥४७-४९॥

॥ नारायण उवाच ॥

इति राजा वचः श्रुत्वा मुनेः परम-शोभनम् ।
देवीं जगाम शरणं सर्व-काम-फल-प्रदाम् ॥५०॥
निराहारो यतात्मा च तन्मनाश्च समाहितः ।
देवी-मूर्तिं मृन्मयीं च पूजयामास भक्तितः ॥५१॥
पूजनान्ते बलिं तस्यै निज-गात्रासृजं ददत् ॥५२॥
तदा प्रसन्ना देवेशी जगद्-योनिः कृपा-वती ।
प्रादुर्बभूव पुरतो वरं ब्रूहीति भाषिणी ॥५३॥
स राजा निज-मोहस्य नाशनं ज्ञानमुत्तमम् ।
राज्यं निष्कण्टकं चैव याचति स्म महेश्वरीम् ॥५४॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥

राजन् ! निष्कण्टकं राज्यं ज्ञानं वै मोह-नाशनम् ।
भविष्यति मया दत्तमस्मिन्नेव भवे तव ॥५५॥
अन्यच्च शृणु भूपाल ! जन्मान्तर-विचेष्टितम् ।
भानोर्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता भवान् ॥५६॥
तत्र मन्वन्तरस्यापि पतित्वं बहु-विक्रमम् ।
सन्ततिं बहुलां चापि प्राप्स्यते मद्-वराद् भवान् ॥५७॥
एवं दत्वा वरं देवी जगामादर्शनं तदा ।
सोऽपि देव्याः प्रसादेन जातो मन्वन्तराधिपः ॥५८॥
एवं ते वर्णितं साधो ! सावर्णेर्जन्म कर्म च ।
एतत् पठंस्तथा शृण्वन् देव्यनुग्रहमाप्नुयात् ॥५९॥

श्रीदेवी-भागवते महा-पुराणे दशम-स्कन्धे
लघु-चण्डी-पाठे उत्तम-चरितं सम्पूर्णम् ॥

नारायण बोले–मुनि की इस प्रकार अति कल्याणकारी बात को सुनकर राजा सुरथ सभी कामनाओं के फल देनेवाली देवी की शरण में गये और निराहार रहकर, अपने को संयमित कर और एक चित्त से भगवती में तन्मय होकर मिट्टी की प्रतिमा में देवी की भक्ति-पूर्वक पूजा की। पूजन के अन्त में अपने शरीर का रक्त देवी को बलि-रूप में अर्पित करते थे। तब जगत् की कारण-भूता, दया-मयी, देवेश्वरी प्रसन्न होकर उनके सामने यह कहती हुई प्रगट हुईं कि 'वर माँगो।' उन राजा ने महेश्वरी से अपने मोह का नाश, श्रेष्ठ ज्ञान और बाधा-रहित राज्य का वर माँगा। ।।५०-५४।।

श्रीदेवी बोलीं–हे राजन् ! बाधा-रहित राज्य, मोह का नाश और ज्ञान इसी जन्म में मेरे वर से तुम्हें प्राप्त होगा। हे भूपति ! और भी सुनो, अगले जन्म का फल। सूर्य से जन्म पाकर तुम सावर्णि होगे। तब उस मन्वन्तर का स्वामित्व, अति पराक्रम और बहुसंख्यक सन्तान भी मेरे वर से तुम प्राप्त करोगे ।।५५-५७।।

इस प्रकार वर देकर देवी तब अन्तर्ध्यान हो गईं। वे राजा भी देवी की प्रसन्नता से मन्वन्तर के स्वामी बने। इस प्रकार हे साधु ! मैंने सावर्णि के जन्म और कर्म का वर्णन किया। इसे पढ़ने और सुनने से देवी का अनुग्रह मिलता है ।।५८-५९।।

प्र-का-श-की-य

अपने देवता के पुनीत स्तोत्रों का नित्य पाठ करना एक सर्व-कल्याणकारी धार्मिक कर्त्तव्य है। इसीलिये प्रत्येक आस्तिक हिन्दू अपने इष्ट-देवता के स्तोत्रों का नित्य पाठ करते हैं।

आराध्य देवता का नित्य यशो-गान करने से अपनी आत्मा की शुद्धि होती है। आराध्य देवता की महिमा को नित्य स्मरण करने से अपने में अपूर्व शक्ति का सञ्चार होता है।

अपने से महान् आदर्शों का गुण-गान करने, उनके दिव्य चरित का श्रवण करने से अपने में भी महान् गुणों का समावेश होता है और नित्य अभ्यास से उनका स्वतः विकास भी होता जाता है।

नित्य स्तव-पाठ द्वारा स्तुति करनेवाला एक ओर अपने इष्ट-देवता की कृपा-दृष्टि का पात्र बनता है, तो दूसरी ओर अपनी आत्मा को वह क्रमशः निर्मल बनाता है, जिससे धीरे-धीरे उसकी सम्पूर्ण पाप-राशि भस्म हो जाती है और वह दिव्य-स्वरूप प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार आत्म-विकास के लिये अपने देवता के स्तोत्रों का नित्य पाठ करना, एक अत्यन्त ही सहज एवं सरल उपाय है। इसके लिये न तो विशेष परिश्रम करना पड़ता है, न ही धन आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके लिये तो केवल अपने देवता का ध्यान हृदयङ्गम करने के लिये ध्यानानुरूप चित्र और विशुद्ध पाठ-पुस्तक की आवश्यकता होती है।

प्रस्तुत 'लघु चण्डी' के प्रकाशन के पीछे हमारा उद्देश्य यही है कि इसके नित्य पाठ द्वारा सभी शाक्त बन्धु लाभ उठायें।

२०-८-१९८८ —प्रकाशक

(आवरण पृष्ठ २ का शेषांश)

महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती - प्रीति - पूर्वकं अमुक-कामना-सिद्धयर्थं श्रीलघु-चण्डी-पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास : श्रीवेदव्यास-ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे, श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-देवताभ्यः नमः हृदि, ऐं वीजाय नमः गुह्ये, ह्रीं शक्तये नमः पादयोः, क्लीं कीलकाय नमः नाभौ, श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-प्रीति-पर्वकं अमुक-कामना-सिद्धयर्थं श्रीलघु-चण्डी-पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

ध्यान

विद्युद्-दाम-सम-प्रभां मृग-पति-स्कन्ध-स्थितां भीषणाम्,
कन्याभिः करवाल - खेट - विलसद्धस्ताभिरासेविताम् ।
हस्तैश्चक्र-गदाऽसि-खेट-विशिखांश्चापं गुणं तर्जनीम्,
विभ्राणामनलात्मिकां शशि-धरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ।।

मानस-पूजा

ॐ लं पृथ्वी-तत्त्वात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः ।
ॐ हं आकाश-तत्त्वात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः ।
ॐ यं वायु-तत्त्वात्मकं धूपं घ्रापयामि नमः ।
ॐ रं अग्नि-तत्त्वात्मकं दीपं दर्शयामि नमः ।
ॐ वं जल-तत्त्वात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि नमः ।
ॐ सं सर्व-तत्त्वात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि नमः ।

मानस पूजन करने के बाद 'लघु-चण्डी' का पाठ करे। पाठ के पूर्ण होने पर क्षमा-प्रार्थना करे । यथा—

ॐ यदक्षरं पद-भ्रष्टं मात्रा-हीनं तु यद् भवेत् ।
तत् सर्वं क्षम्यतां देवि ! प्रसीद परमेश्वरि ।।

अन्त में आसन का गन्ध-पुष्प से पूजन कर उसे लपेट कर सुरक्षित स्थान पर रखकर सांसारिक कर्तव्यों के पालन में तत्पर हो ।

शाक्त-धर्म

सम्बन्धी

प्रामाणिक पुस्तकों के लिये

सम्पर्क करें

चण्डी कार्यालय

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक

श्री ऋतशील शर्मा, वराबाणी प्रेस, इलाहाबाद—६